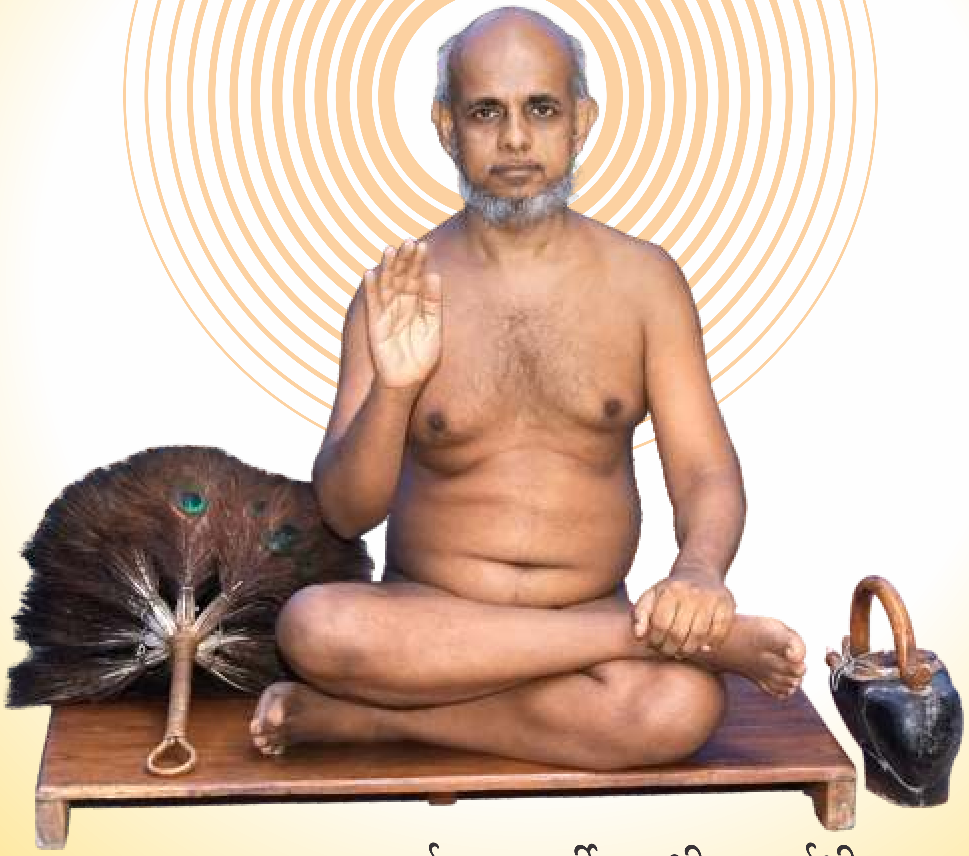

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

आस्रव त्रिभंगी

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य मुनिप्रवरश्री श्रुत जी महाराज

अनुवादिका
पूज्या गणिनी-आर्यिकाश्री ज्ञानमती माताजी

प्रकाशक
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
हस्तिनापुर-मेरठ (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

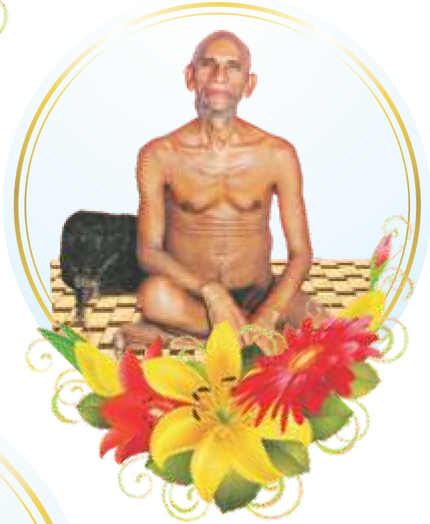

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

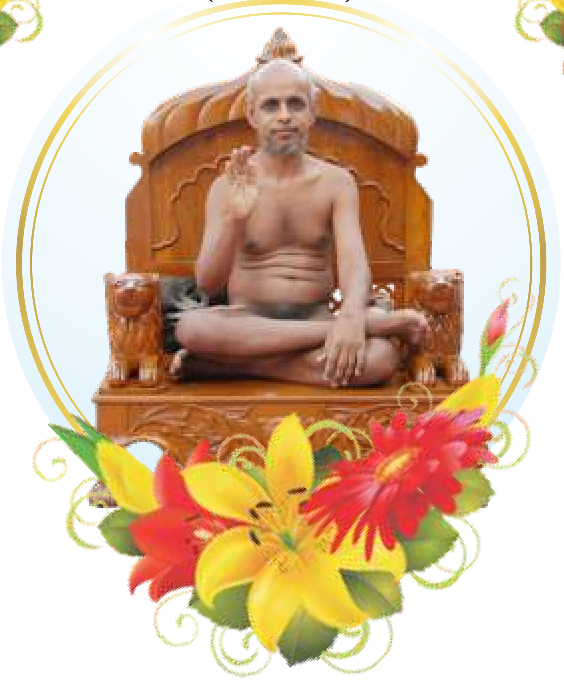

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 377
ISBN-978-93-82071-58-7

आस्रव त्रिभंगी

श्री श्रुतमुनिविरचित (संदृष्टि सहित)

–अनुवादकर्त्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	फाल्गुन कृ. ग्यारस, 7 मार्च 2013	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक:-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

श्रावकों के षट् आवश्यक कर्त्तव्यों में आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप बताया है। इस स्वाध्याय से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है। यथा–

सुत्त पुण समयं पडि असंखेज्जगुणसेढीए पावं।
गलिय पच्छा सत्व कम्मक्खयकारणमिदि।।

सूत्र प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणी रूप से पापों का नाश करके उसके बाद सम्पूर्ण कर्मों के क्षय का कारण होता है।

अर्थात् जिस समय हम ग्रंथों का स्वाध्याय करते हैं उस समय असंख्यातगुणित श्रेणीरूप कर्मों का नाश होता है और सूत्र के ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति का कारण ऐसा शुक्लध्यान भी प्रकट हो जाता है क्योंकि ज्ञान ही निश्चल अवस्था को प्राप्त हो जाने पर ध्यान कहलाता है जैसे कि न हिलती हुई अग्नि की शिखा निश्चल दिखती है।

हम सौभाग्यशाली है कि इस श्रुत का भण्डार हमें अनेक महान आचार्यों के द्वारा प्राप्त हुआ है जिसके स्वाध्याय से हम ज्ञानप्राप्ति के साथ अशुभ कर्म का क्षय भी कर रहे हैं किन्तु आज काल के प्रभाववश जो ज्ञान का क्षयोपशम पूर्व में विद्यमान था आज उतना क्षयोपशम न होने से हम पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रंथों की प्राकृत और संस्कृत भाषा को नहीं समझ पाते हैं और उन विषयों से अनभिज्ञ रह जाते हैं, हाँ! अगर वह हिन्दी भाषा में अनुवादित हैं तब तो श्रावक के लिए शुभास्रव का कारण बन जाते हैं।

महावीर स्वामी के मोक्षगमन के बाद ग्रंथ लेखन की परम्परा को प्रारंभ करने वाली राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने 300 ग्रंथों का लेखन कर एक ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित करने के साथ-साथ जैनागम पर जो महान उपकार किया है वह वर्णनातीत है, इसके लिए जिनशासन उनका चिरऋणी रहेगा। ग्रंथ लेखन की शृंखला में पूज्य माताजी ने जहाँ अनेकों न्याय, व्याकरण, भूगोल, अध्यात्म, सिद्धांत आदि विषयों से समन्वित क्लिष्ट से क्लिष्ट विषयों को अनुवादित कर हमें प्रदान किया वहीं सरल से सरल भाषाशैली में बाल-गोपाल, युवा, वृद्ध सभी की ज्ञानपिपासा को शांत करने हेतु अनेक जनोपयोगी ग्रंथों की भी रचना की जिसके स्वाध्याय से आगम का गूढ़ रहस्य भी सरलता से समझ में आता है।

इसी शृंखला में उन्होंने सन् 1973 में नजफगढ़-दिल्ली प्रवास के समय आचार्य श्री श्रुतमुनि विरचित ''आस्रवत्रिभंगी'' ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद कर आस्रवों के बारे में ज्ञान प्राप्ति हेतु हमें एक महत्वपूर्ण कृति प्रदान की है, जिसे प्रकाशित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। इस कृति का स्वाध्याय कर सभी प्रबुद्धवर्ग आस्रव के भेद-प्रभेदों को जानकर शुभास्रव का बंध करते हुए आत्मा को परमात्मा बनाने का पुरुषार्थ करें यही इस कृति की सार्थकता है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

जिनागम की कीर्तिलता को विकसित करने वाले आचार्यों की परम्परा में श्रुतमुनि नामक महान आचार्य हुए हैं जिन्होंने आस्रवत्रिभंगी नामक ग्रंथ की रचना की, इनका परिचयात्मक विवेचन डॉ. जगदीशचंद्र जैन द्वारा लिखित ''प्राकृत साहित्य का इतिहास'' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ में किया गया है। इन श्रुतमुनि के दीक्षागुरु श्री बालचंद्र मुनि थे जो सं. 1330 में हुए ऐसा वर्णन आस्रवत्रिभंगी ग्रंथ में आया है। श्रवणबेलगोला में श्रुतमुनि की निषधा पर गंगराज कवि द्वारा रचित एक 75 पद्यों का विशाल संस्कृत अभिलेख है। यह निषद्या शक सं. 1355 (वि.सं.1490) में प्रतिष्ठित की गई है। इसमें प्रधानतः श्रुतकीर्ति, चारुकीर्ति, योगिराट् पण्डिताचार्य और श्रुतमुनि की महिमा का वर्णन है। यह निषद्या श्रुतमुनि के एक शतक पश्चात् प्रतिष्ठित की गई होगी अतः श्रुतमुनि का समय ''तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'' पुस्तक के अनुसार 13 वीं शती का अन्तिम भाग है।

इनकी कृतियों में आस्रवत्रिभंगी के अतिरिक्त भावत्रिभंगी और परमागमसार भी महत्त्वपूर्ण कृति हैं। आस्रवत्रिभंगी नामक इस लघुकाय ग्रंथ में मात्र 72 गाथाएँ हैं जिनमें आस्रव के 57 भेदों को गुणस्थानों में निरुपित किया गया है और साथ में सन्दृष्टि रचना भी दी गई है।

आ+स्रव=आस्रव का शाब्दिक अर्थ होता है चारों ओर से धीरे-धीरे प्रवेश करना अर्थात् जो आत्मप्रदेशों में धीरे-धीरे प्रवेश कर रहे हैं वे आस्रव हैं, इन्हें 'कर्म' नाम से कहा जाता है। इन कर्मों से ही सूक्ष्म शरीर अथवा कार्मण शरीर का निर्माण होता है। कर्म या आस्रव के प्रधान कारण ''राग-द्वेष'' हैं जिनके कारण जीव आस्रव से बंध को प्राप्त होकर स्वयं को इस संसार सागर में गोते खाने के योग्य बनाता है। प्रस्तुत 'आस्रवत्रिभंगी'' ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय आस्रव विचार है। आचार्यदेव ने मंगल के अनंतर मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, इनको आस्रव कहा है। इन आस्रव के भेदों को उपभेदों में विभक्त किया है। मिथ्यात्व के 5, अविरति के 12, कषाय के 25 और योग के 15 भेद, इस प्रकार आस्रव के 57 उपभेद हैं। आचार्य श्रुतमनि ने आस्रवों को गुणस्थानों में घटित करते हुए बताया है कि मिथ्यात्व गुणस्थान तक मिथ्यात्व रहता है, देशसंयत गुणस्थान तक अविरति रहती है, सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक कषायें रहतीं हैं एवं सयोगकेवली पर्यन्त योग रहते हैं। इसके साथ ही कौन-कौन से विशेष आस्रव किन-किन गुणस्थानों में होते है, किस गुणस्थान में कितने आस्रव व्युच्छिन्न होते हैं, प्रत्येक गुणस्थान में न होने वाले आस्रवों के क्या नाम हैं,

इत्यादि प्रकार से विवेचन करते हुए ग्रंथकार ने गुणस्थानों और मार्गणाओं के अनन्तर आस्रव भेदों के भाव, अभाव और व्युच्छित्ति का संदृष्टिरचनापूर्वक सुन्दर विवेचन किया है। आस्रव को त्रयात्मक रीति से विवेचन करने के कारण ही आचार्य श्रुतमुनि ने अपनी इस लघुकाय कृति को ''आस्रवत्रिभंगी'' नाम से अलंकृत किया है।

यह ग्रंथ प्राकृत भाषा में होने से जनसाधारण के गम्य नहीं था किन्तु यह बीसवीं शताब्दी का सौभाग्य ही है जो 300 ग्रंथों की रचनाकर्त्री, साक्षात् शारदा स्वरूपा परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने आचार्य श्रुतमुनि विरचित आस्रवत्रिभंगी का सन् 1973 में हिन्दी भाषा में अनुवाद कर इस विषय को अत्यधिक सरल और पठनीय बना दिया है। अपनी वैदुष्य प्रतिभा और सूक्ष्म दृष्टि के फलस्वरूप ही जिनागम के दुरुह, दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विषयों को माताजी ने अपनी ओजपूर्ण, सरल, सरस भाषाशैली में लिखकर जिनशासन पर महान उपकार किया है अतएव ज्ञान एवं चारित्र समन्वय की प्रतिमूर्ति के रूप में जिनशासन उन्हें सदैव स्मरण रखेगा।

यह आस्रवत्रिभंगी ग्रंथ विद्तवर्ग एवं जनसामान्य दोनों के ज्ञानवर्धन का महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो और इसकी अनुवाद-भावार्थकर्त्री पूज्य माताजी दीर्घायु हों और जिनागम को ऐसी ही अमूल्य कृतियाँ प्रदानकर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में अनुरक्त करती रहें यही वीर प्रभू से मंगल प्रार्थना है।

विषय-सारणी

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1
2.	आस्रव के भेद	1
3.	गुणस्थानों में व्युच्छिन्न होने वाले आस्रवों की संख्या	4
4.	मार्गणा में आस्रव का प्रकरण	14
5.	प्रशस्ति	42
6.	बंध प्रत्यय	43
7.	जैन आगम में द्वादश तप (इनके क्रम में अन्तर)	46

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा- भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमामहावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थइत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डलविधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण–जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा–हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?–भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यीय बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खिाबावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कॅनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

आस्रव त्रिभंगी

(संदृष्टि सहित)

श्री श्रुतमुनि विरचित

(हिन्दी अनुवाद—गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

-मंगलाचरण-

पणमिय सुरेंदपूजियपयकमलं वड्ढमाणममलगुणं।
पच्चयसत्तावण्णं वोच्छे हं सुणह भवियजणा।।1।।

प्रणम्य सुरेन्द्रपूजितपदकमलं वर्धमानं अमलगुणं।
प्रत्ययसप्तपंचाशत् वक्ष्येऽहं शृणुत भव्यजनाः।।

सुरेन्द्र से पूजित हैं चरण कमल जिनके, ऐसे अमल गुणों से सहित श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करके आस्रव के कारणभूत सत्तावन भेदों को मैं कहूँगा। हे भव्यजीवों! तुम उन्हें सावधानचित्त होकर सुनो!।।1।।

आस्रव के भेद

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणवीसा पण्णरसा होंति तब्भेया।।2।।

मिथ्यात्वमविरमणं कषाया योगाश्च आस्रवा भवन्ति।
पंच द्वादश पंशविंशतिः पंचदश भवन्ति तद्भेदाः।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये आस्रव कहलाते हैं। ये आस्रव के लिए कारणभूत हैं अतः इन्हें आस्रव कह देते हैं। इनके उत्तर भेद क्रम से

मिथ्यात्व के पाँच, अविरति के बारह, कषाय के पच्चीस और योग के पंद्रह भेद होते हैं।।2।।

मिथ्यात्व का लक्षण एवं भेद

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्चअत्थाणं।
एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं।।3।।

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानां।
एकांतं विपरीतं विनयं संशयितमज्ञानम्।।

मिथ्यात्व के उदय से जो तत्वों का अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व कहलाता है उसके 5 भेद हैं—एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान।।3।।

अविरति का लक्षण एवं भेद

छस्सिंदिएसुऽविरदी छज्जीवे तह य अविरदी चेव।
इंदियपाणासंजम दुदसं होदित्ति णिद्दिट्ठं।।4।।

षट्स्विन्द्रियेष्वविरतिः षड्जीवेषु तथा चाविरतिश्चैव।
इन्द्रियप्राणासंयमा द्वादश भवन्तीति निर्दिष्टं।।

पाँच इंद्रिय और मन इन छह इंद्रियों के विषयों से विरक्त नहीं होना और पाँच स्थावर एवं त्रस ऐसे षट्काय जीवों की विराधना से विरक्त नहीं होना अविरति है। इस प्रकार से इंद्रिय असंयम और प्राणी असंयम के भेद से अविरति के 12 भेद होते हैं।।4।।

कषाय के भेद

अणमप्पच्चक्खाणं पच्चक्खाणं तहेव संजलणं।
कोहो माणो माया लोहो सोलस कसायेदे।।5।।

[1]अनमप्रत्याख्यानः प्रत्याख्यानः तथैव संज्वलनः।
क्रोधो मानो माया लोभः षोडश कषाया एते।।

अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन इन चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से कषाय के 16 भेद होते हैं।।5।।

---

1. अनंतानुबंधि।

हस्स रदि अरदि सोयं भयं जुगंछा य इत्थिपुंवेयं।
संढं वेयं च तहा णव एदे णोकसाया य।।6।।

हास्यं रतिः अरतिः शोकः भयं जुगुप्सा च स्त्री-पुंवेदौ।
षंढो वेदः च तथा नवैते नोकषायाश्च।।

एवं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये नव नोकषायें मिलकर कषाय के 25 भेद होते हैं।।6।।

योग के भेद

मणवयणाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।
तण्णामं होदि तदा तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा।।7।।

मनोवचनानां प्रवृत्तिः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु।
तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः।।

सत्य, असत्य, उभय और अनुभय अर्थों में मन, वचन की प्रवृत्ति सत्य मन, सत्य वचन आदि नाम से कही जाती है। इन सत्य मन, असत्य मन की प्रवृत्तियों के निमित्त से जो आत्मा के प्रदेशों में हलन, चलन होता है वह योग कहलाता है अतः इन सत्यमन, वचन के योग से सत्य मनोयोग, असत्य मन, वचन के योग से असत्य मनोयोग आदि उन-उन नाम वाले योग कहलाते हैं। इनके नाम –सत्यमनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्यवचन योग, असत्यवचन योग, उभयवचन योग, अनुभय वचन योग, ये मनोयोग, वचनयोग के आठ भेद हुये।।7।।

ओरालं तंमिस्सं वेगुव्वं तस्स मिस्सयं होदि।
आहारय तंमिस्सं कम्मइयं कायजोगेदे।।8।।

औदारिकं तन्मिश्रं वैक्रियिकं तस्य मिश्रकं।
आहारकं तन्मिश्रं कार्मणकं काययोगा एते।।

औदारिक काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, वैक्रियक काययोग, वैक्रियकमिश्र काययोग, आहारक काययोग, आहारकमिश्र काययोग और कार्मणयोग ये काययोग के 7 मिलकर योग के पंद्रह भेद होते हैं।।8।।

किन-किन गुणस्थानों में कौन-कौन से आस्रव हैं ?

मिच्छे खलु मिच्छत्तं अविरमणं देससंजदो[1] त्ति हवे।
सुहुमो त्ति कसाया पुणु सजोगिपेरंत जोगा हु[2]।।9।।

मिथ्यात्वे खलु मिथ्यात्वं अविरमणं देशसंयतमिति भवेत्।
सूक्ष्ममिति कषायाः पुनः सयोगिपर्यन्तं योगा हि।।

मिथ्यात्व गुणस्थान तक मिथ्यात्व रहता है, देशसंयत गुणस्थान तक अविरति रहती है, सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक कषायें रहती हैं एवं सयोगकेवली पर्यंत योग रहते हैं।।9।।

कौन-कौन से विशेष आस्रव किन-किन गुणस्थानों में होते हैं?

मिच्छदुगविरदठाणे मिस्सदुकम्मइयकायजोगा य।
छट्ठे हारदु केवलिणाहे ओरालमिस्सकम्मइया।।10।।

मिथ्यात्वद्विकाविरतस्थाने मिश्रद्विककार्मणकाययोगाश्च।
षष्ठे आहारद्विकं केवलिनाथे औदारिकमिश्रकार्मणाः।।

मिथ्यात्व, सासादन और असंयत गुणस्थानों में औदारिकमिश्र, वैक्रियक-मिश्र और कार्मण काययोग होते हैं। छठे गुणस्थान में आहारक, आहारकमिश्र योग होते हैं एवं केवली भगवान के औदारिक मिश्र और कार्मण योग होते हैं।।10।।

गुणस्थानों में व्युच्छिन्न होने वाले आस्रवों की संख्या

[3]पंच चुद सुण्ण सत्त य पण्णर दुग सुण्ण छक्क छक्केक्कं।
सुण्णं चदु सगसंखा पच्चयविच्छित्ति णायव्वा।।11।।

---

1. इति यावदर्थे।
2. चदुपच्चइगो मिच्छे बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो।
   मिस्सगविदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि।।1।।
   उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं।
   सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं।।2।।
3. अत्र केशववर्णि नोक्तगाथा–
   पण चदु सुण्णं णवयं पण्णरस दोण्णि सुण्ण छक्कं च।
   एक्केकं दस जाव य एक्कं सुण्णं च चारि सग सुण्णं।।1।।

पंच चतुः शून्यं सप्त च पंचदश द्वौ शून्यं षट्कं षट्कैकं एकं।
शून्यं चतुः सप्तसंख्या प्रत्ययविच्छित्तिः ज्ञातव्या।।

पहले गुणस्थान में 5, दूसरे में 4, तीसरे में शून्य, चौथे में 7, पाँचवें में 15, छठे में 2, सातवें में शून्य, आठवें में छह, नवमें के छह भागों में क्रम से 1-1 करके छह, दसवें में 1, ग्यारहवें में शून्य, बारहवें में 4, तेरहवें में 7, चौदहवें में शून्य ऐसे आस्रवों की व्युच्छित्ति का क्रम जानना।।11।।

प्रत्येक गुणस्थान में नहीं होने वाले आस्रवों के नाम

मिच्छे हारदु सासणसम्मे मिच्छत्तपंचकं णत्थि।
अण दो मिस्सं कम्मं मिस्से ण चउत्थए सुणह।।12।।

मिथ्यात्वे आहारकद्विकं सासादनसम्यक्त्वे मिथ्यात्वपंचकं नास्ति।
[2]अनः द्वे मिश्रे[3] कर्म मिश्रे न चतुर्थे शृणुत।।

मिथ्यात्व में आहारक योग, आहारकमिश्र नहीं हैं, सासादन सम्यक्त्व में पाँच मिथ्यात्व नहीं हैं, मिश्र गुणस्थान में अनंतानुबंधी 4, औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र, कार्मण ये 7 आस्रव नहीं हैं, अब चौथे गुणस्थान में सुनो!।।12।।

दो मिस्स कम्म खित्तय तसवह वेगुव्व तस्स मिस्सं च।
ओरालमिस्स कम्ममपच्चक्खाणं तु ण हि पंचे।।13।।

द्वे मिश्रे कर्म क्षिप, त्रसवधो वैक्रियिकं तस्य मिश्रं च।
औदारिकमिश्रं कर्माप्रत्याख्यानं तु न हि पंचमे।।

चतुर्थ गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र और कार्मणयोग नहीं है। पाँचवें में त्रसवध, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मण और अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ ये नव आस्रव नहीं हैं।।13।।

इत्तो उवरिं सगसगविच्छित्तिअणासवाण संजोगे।
उवरुवरिं गुणठाणे होंतित्ति अणासवा णेया।।14।।

इतः उपरि स्वस्वविच्छित्त्यास्रवाणां संयोगे।
उपर्युपरि गुणस्थाने भवन्तीति अनास्रवा ज्ञेयाः।।

---

1. अनिवृत्तिकरण गुणस्थानस्य षड्भागास्तत्र एकैकस्मिन् भागे एकैक आस्रवो व्युच्छिद्यते क्रमेण।
2. अनन्तानुबन्धिचतुष्कं। 3.औदारिकवैक्रियिकाख्ये मिश्रे।

इसके आगे अपने-अपने गुणस्थानों में व्युच्छिन्न आस्रवों को ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में मिलाते जाइये, वे ही अनास्रव बन जाते हैं।।14।।

गुणस्थानों में व्युच्छिन्न आस्रवों के नाम

[1]मिच्छे पणमिच्छत्तं साणे अणचारि मिस्सगे सुण्णं।
अयदे विदियकसाया तसवह वेगुव्वजुगलछिदी।।15।।

मिथ्यात्वे पंचमिथ्यात्वं, साने अनचतुष्कं मिश्रके, शून्यं,।
अयते द्वितीयकषायाः त्रसवधवैक्रियिकयुगलच्छित्तिः।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में 5 मिथ्यात्व की व्युच्छित्ति होती है। सासादन में अनंतानुबंधी चार की, मिश्र में शून्य, चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषाय 4, त्रसवध, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र इन 7 की व्युच्छित्ति होती है।।15।।

अविरयएक्कारह तियचउक्कसाया पमत्तए णत्थि।
अत्थि हु आहारदुगं हारदुगं णत्थि सत्तट्ठे।।16।।

अविरत्यैकादश तृतीयचतुष्कषायाः प्रमत्तके न संति।
अस्ति हि आहारद्विकं, आहारद्विकं नास्ति सप्तमे अष्टमे।।

देशसंयत गुणस्थान में 11 अविरति, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार इन 15 की व्युच्छित्ति होती है अतः ये 15 आस्रव प्रमत्तसंयत में नहीं हैं एवं प्रमत्तसंयत में आहारकयुगल पाये जाते हैं। आगे सातवें, आठवें गुणस्थान में ये आहारकद्विक नहीं हैं अर्थात् छठे में आहारकद्विक की व्युच्छित्ति होती है। सातवें में व्युच्छित्ति किसी आस्रव की नहीं है।।16।।

---

1. अत्र सुखावबोधार्थं केशववर्णिनोक्तं गाथापंचकमुद्ध्रियते–
   मिच्छे पणमिच्छत्तं, पढमकसायं तु सासणे मिस्से।
   सुण्णं, अविरदसम्मे विदियकसायं विगुव्वदुगकम्मं।।1।।
   ओरालमिस्स तसवह णवयं, देसम्मि अविरदेक्कारा।।
   तदियकसायं पण्णर, पमत्तविरदम्मि हारदुग छेदो।।2।।
   सुण्णं पमादरहिदे, पुव्वे छण्णोकसायवोच्छेदो।
   अणियट्टिम्मि य कमसो, एक्केकं वेदतियकसायतियं।।3।।
   सुहमे सुहमो लोहो, सुण्णं उवसंतगेसु खीणेसु।
   अलीयुभयवयणमणचउ, जोगिम्मि य सुणह वोच्छामि।।4।।
   सच्चणुभायं वयणं मणं च ओरालकायजोगं च।
   ओरालमिस्सकम्मं उवयारेणेव सब्भावो।।5।।

छण्णोकसाय णवमे ण हि दसमे संढमहिलपुंवेयं।
कोहो माणो माया ण हि लोहो णत्थि उवसमे खीणे।।17।।

षण्णोकषायाः, नवमे [1]'नहि' दशमे पंढमहिलपुंवेदाः।
क्रोधो मानो माया[2]'नहि' लोभो, नास्ति[3] उपशमे, क्षीणे।।

छह नोकषाय नवमें गुणस्थान में नहीं हैं अर्थात् आठवें में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छह आस्रवों की व्युच्छित्ति हो जाती है। दसवें गुणस्थान में नपुंसक, स्त्री, पुरुषवेद, क्रोध, मान, माया ये छह आस्रव नहीं हैं, इनकी व्युच्छित्ति नवमें गुणस्थान के छह भागों में क्रम से हो जाती है। उपशांतमोह, क्षीणमोह नामक ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में लोभ कषाय नहीं है मतलब दसवें में लोभ की व्युच्छित्ति हो जाती है, ग्यारहवें गुणस्थान में व्युच्छित्ति का अभाव है।।17।।

अलियमणवयणमुभयं णत्थि जिणे अत्थि सच्चमणुभयं।
मिस्सोरालियकम्मं अपच्चयाऽजोगिणो होंति।।18।।

अलीकमनोवचनं उभयं नास्ति[4], जिने अस्ति सत्यमनुभयं।
मिश्रौदारिककार्मणा, अप्रत्यया अयोगिनो भवन्ति।।

असत्य मनोयोग, असत्यवचन योग, उभय मनोयोग, उभय वचनयोग ये 4 योग सयोगकेवली में नहीं हैं, इन चारों की व्युच्छित्ति बारहवें में हो चुकी है एवं सयोगकेवली जिनेन्द्र भगवान के सत्यमनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्यवचन योग, अनुभयवचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मण ये 7 आस्रव पाये जाते हैं किन्तु इस सयोगी गुणस्थान के अंत में इनकी व्युच्छित्ति हो जाने से अयोगकेवली आस्रव एवं आस्रव की व्युच्छित्ति से रहित हैं।।18।।

भावार्थ –*सयोगकेवली के जो सात योग के निमित्त से आस्रव कहा गया है, वह केवल नाम मात्र ही है क्योंकि ''जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभाग कषायदो होंति'' इस कथन के अनुसार प्रकृति और प्रदेश बंध योग से होते हैं एवं स्थिति और अनुभाग बंध कषाय से होते हैं अतः कषाय न होने से स्थिति,*

1-2. व्युच्छिद्यते इत्यर्थः। 3. शून्यमित्यर्थः। 4. व्युच्छिद्यते इत्यर्थः।

अनुभाग बंध नहीं होता है पुनः ''समयट्ठिदिगोबंधो'' इस कर्मकाण्ड के अनुसार एक समय मात्र की स्थिति वाला बंध होता है अर्थात् वह बंध नहीं के समान है अतएव यहाँ ईर्यापथ आस्रव माना है। ''सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः'' इस सूत्र के अनुसार कषाय सहित जीव के सांपरायिक आस्रव एवं कषायरहित जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है। केवल इन योगों के निमित्त से कर्म आये और चले गये। मात्र योग के अस्तित्व से यहाँ आस्रव का वर्णन किया गया है। कहा भी है –पहले गुणस्थान तक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग इन चारों ही निमित्तों से बंध होता है, सासादन, मिश्र, अविरत गुणस्थान तक मिथ्यात्व से रहित तीन कारणों से बंध होता है।, पाँचवें में 11 अविरति एवं कषाय योग के निमित्त से बंध होता है। छठे से दसवें तक कषाय और योग के निमित्त से बंध होता है एवं ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान तक योग मात्र से बंध होता है।

पच्चयसत्तावण्णा गणहरदेवेहिं अक्खिया सम्मं।
ते चउबंधणिमित्ता बंधादो पंचसंसारे।।19।।

प्रत्ययसप्तपंचाशत् गणधरदेवैः कथिताः सम्यक्।
ते चतुबन्धनिमित्ताः बन्धतः पंचसंसारे।।

इस प्रकार से गणधर देवों ने सम्यक् प्रकार से सत्तावन प्रत्यय –आस्रव बतलाये हैं। ये आस्रव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव रूप पाँच प्रकार के संसार को प्राप्त कराने में कारणभूत प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप चार प्रकार के कर्मबंध के लिये निमित्तभूत हैं।।19।।

गुणस्थानों में आस्रव की संख्या

[1]पणवण्णं पण्णासं तिदाल छादाल सत्ततीसा य।
चउवीस दुवावीसं सोलसमेगूण जाव णव सत्ता।।20।।

1. अत्रागमोक्त गाथाद्वयं यथा– पणवण्णा पण्णासा तिदाल छादाल सत्ततीसा य।
चदुवीसा वावीसा बावीसय पुव्वकरणोत्ति।।1।।
धूले सोलसपहुदी एगूणं जाव होदि दस ठाणं।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव।।2।।

पंचपंचाशत् पंचाशत् त्रिचत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत् सप्तत्रिंशच्च।
चतुर्विंशतिः द्विद्वाविंशतिः षोडश एकोनं यावन्नव सप्त।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में 55, सासादन में 50, मिश्र में 43, असंयत में 46, देशविरत में 37, प्रमत्त में 24, अप्रमत्त में 22, अपूर्वकरण गुणस्थान में 22, अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में 16, आगे छठे भाग तक एवं आगे नव आस्रव तक 1-1 कम करते चलिये अर्थात् द्वितीय भाग में 15, तृतीय में 14, चतुर्थ में 13, पंचम में 12, छठे में 11 आस्रव हैं। वैसे ही दसवें गुणस्थान में 10, उपशांत में 9 और क्षीणकषाय गुणस्थान में 9 आस्रव होते हैं। सयोगकेवली में 7 आस्रव होते हैं।।20।।

गुणस्थानों में अनास्रवों की संख्या

दुग[1] सग चदुरिगिदसयं वीसं तियपणदुसहियतीसं च।
इगिसगअडअडदालं पण्णासा होंति सगवण्णा।।21।।

द्वौ सप्त चतुरेकदशकं विंशतिः त्रिकपंच-द्विसहितत्रिंशच्च।
एकसप्ताष्टाष्टचत्वारिंशत् पंचाशत् भवन्ति सप्तपंचाशत्।।

प्रथम गुणस्थान में 2, द्वितीय में 7, तृतीय में 14, चतुर्थ में 11, पंचम में 20, छठे में 33, सातवें में 35, आठवें में 35, नवमें के प्रथम भाग में 41, आगे 47 तक एक-एक बढ़ते चलिये अर्थात् द्वितीय भाग में 42, तृतीय भाग में 43, चतुर्थ भाग में 44, पंचम भाग में 45, छठे भाग में 46 आस्रव नहीं होते हैं। दसवें गुणस्थान में 47, ग्यारहवें में 48, बारहवें गुणस्थान में 48, तेरहवें में 50 और चौदहवें में 57 अनास्रव होते हैं अर्थात् उपर्युक्त आस्रव नहीं होते हैं।।21।।

1. अत्र केशववर्णिनोक्तगाथा–
दोण्णि य सत्त य चोद्दसणुदये वि एयार वीस तेत्तीसं।
पणतीस दुसिगिदालं सत्तेतालट्ठदाल दुसु पण्णं।।1।।

गुणस्थान रचना (1)

गुणस्थान	*आस्रव*	*अनास्रव*	*आस्रव व्युच्छित्ति*
मि.	55	2	5
सा.	50	7	4
मि.	43	14	0
अ.	46	11	7
दे.	37	20	15
प्र.	24	33	2
अ.	22	35	0
अपू.	22	35	6
अनि.1	16	41	1
भाग.2	15	42	1
भाग 3	14	43	1
भाग 4	13	44	1
भाग 5	12	45	1
भाग 6	11	46	1
सू.	10	47	1
उप.	9	48	0
क्षी.	9	48	4
स.	7	50	7
अयो.	0	57	0

कोष्ठक नं. 1 चार्ट का स्पष्टीकरण

गुणस्थान	आस्रव	अनास्रव	व्युच्छित्ति
1.	55–5 मिथ्यात्व, 12 अविरति, 25 कषाय आहारकद्विक बिना 13 योग	आहारद्विक-2	मिथ्यात्व 5
2.	50–12 अविरति, 25 कषाय, 13 योग	आहारकद्विक 2, मिथ्यात्व 5	अनंतानुबंधी 4
3.	43–12 अवि., 21 कषाय, मनोयोग 4, वचनयोग 4, औदारिक-वैक्रियिक-2	आहा. 2, मिथ्या. 5, अनंता. 4 वैक्रियक मिश्र, औदा.मि., कार्माण	0
4.	46–12 अविरति, 21 कषाय, 13 योग	आहार.2, मिथ्या.5, अनंता. 4	अप्रत्या. 4, त्रसवध 1, वैक्रि. 2
5.	37–11 अविरति, प्रत्या. संज्व.8, क. 9 नोकषाय, मनो.4, वचन 4, औ. 1	मि.5, त्रसवध 1, अनं. अप्र. 8, आ.2, वैक्रि.2, औदा.मि. 1,का. 1	प्रत्याख्यान 4, अविरति 11
6.	24–संज्वलन 4, हास्यादि 9, मनो. 4, वच. 4, औ. 1, आहा.2	मि.5, अवि.12, कषाय 12 वैक्रि.2, औ.मि.1, कार्मण1	आहारकद्विक-2
7.	22–संज्व. 4, हास्या.9, मनो.4, वच.4, औ. 1	मि.5, अवि. 12, कषाय 12, वै.2, आहा.2, औ.मि.1, का.1	0
8.	22–संज्व. 4, हास्या. 9, मनो. 4, वच.4, औ. 1	मि. 5, अवि. 12, कषाय 12, वै.2 आहा.2, औ. 1, कार्मण 1	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा-6
9. भाग 1	16–संज्व. 4, स्त्री पुं., नपुंसक वेद-3, योग 9	मि. 5, अवि. 12, क. 12, वै. 2 आ. 2, औ. 1, का. 1, हास्यादि 6	प्रथम भाग में-नपुंसक वेद-1
भाग 2	15–सं. 4, स्त्री-पुरुष-2, योग 9	मि. 5, अवि.12, क. 12, योग 6 हास्या. 6, नपुंसक वेद	भाग 2 में-स्त्रीवेद 1
भाग 3	14–संज्व. 4, पुरु.1, योग 9	मि. 5, अ. 12, क. 12, योग 6, हास्या. 6, नपुंसक, स्त्रीवेद-2	भाग 3 में-पुरुषवेद 1
भाग 4	13–सं. 4, योग 9	मि.5, अ.12, क.12, यो.6, हा.6, वेद 3	भाग 4 में-1 क्रोध
भाग 5	12–सं. मान, माया, लोभ, योग 9	मि. 5, अ.12, क.13, योग 6 हास्या. 6, वेद 3	भाग 5 में-1 मान
भाग 6	11–सं. माया, लोभ, योग 9	मि. 5, अ. 12, क. 14, योग 6, हा.6, वेद 3	भाग 6 में-1 माया
10.	10–लोभ, योग 9	मि. 5, अ. 12, क. 15, यो. 6, हा. 6, वेद 3	1 लोभ कषाय
11.	9–योग	मि. 5, अ. 12, क. 16, योग 6 हास्या. 6, वेद 3	0
12.	9–योग	मि. 5, अ. 12, क. 16, योग 6, हा. 6, वेद 3	4-असत्यमनो., वचनयोग, उभय मनो वचनयोग
13.	7–सत्य मन वचन, अनुभय मन वचन, औदारिकद्विक 2, कार्मण-1	मि. 5, अ. 12, क. 16, योग 8, हा. 6, वेद 3	7 योग
14.	0	मि. 5, अ. 12, क. 25, योग 15	0

अब गुणस्थानों में योग को घटित करते हैं

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एक्कारा।
जोगिम्हि सत्तजोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं।।22।।

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश।
योगिनि सप्तयोगा अयोगिस्थानं भवेच्छून्यं।।

तीन गुणस्थानों में 13-13, मिश्र में 10, सात गुणस्थानों में 9-9 एवं छठे में 11, सयोगी में 7, अयोगी में शून्य होते हैं अर्थात् प्रथम गुणस्थान में 13, द्वितीय में 13, तृतीय में 10, चतुर्थ में 13, पंचम में 9, छठे में 11, सातवें में 9, आठवें में 9, नवमें में 9, दसवें में 9, ग्यारहवें में 9, बारहवें में 9, तेरहवें में 7 और चौदहवें में शून्य है।।22।।

योग रचना

मि.	सा.	मि.	अ.	देश.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उप.	क्षी.	स.	अयो.
13	13	10	13	9	11	9	9	9	9	9	9	7	0

गुणस्थानों में कषाय

दुसु दुसु पणइगिवीसं सत्तरसं देससंजदे तत्तो।
तिसु तेरं णवमे सग सुहमेगं होंति हु कसाया।।23।।

[1]द्वयोः [2]द्वयोः पंचैकविंशतिः सप्तदश देशसंयते ततः।
त्रिषु त्रयोदश नवमे सप्त सूक्ष्मे एकः भवन्ति हि कषायाः।।

दो गुणस्थानों में 25, दो गुणस्थानों में 21, देशसंयत में 17, आगे तीन गुणस्थानों में 13, नवमें गुणस्थान में 7, दसवें में 1 कषाय होती है।।23।।

कषाय रचना

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.
25	25	21	21	17	13	13	13	7	1

इस प्रकार से गुणस्थान में त्रिभंगी समाप्त हुई।

1. प्रथम द्वितीय गुणस्थाने पंचविंशतिः। 2. तृतीय चतुर्थ गुणस्थाने एकविंशतिइत्यर्थः।

मार्गणा में आस्रव का प्रकरण

विजिदचउघाइकम्मे केवलणाणेण णादसयलत्थे।
वीरजिणे वंदित्ता जहाकमं मग्गणासवं वोच्छे।।24।।

विजितचतुर्घातिकर्माणं केवलज्ञानेन ज्ञातसकलार्थं।
वीरजिनं वन्दित्वा यथाक्रमं मार्गणायामास्रवान् वक्ष्ये।।

जिन्होंने चार घातिया कर्मों को जीत लिया है एवं केवलज्ञान के द्वारा संपूर्ण पदार्थों को जान लिया है ऐसे श्री वीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके मैं क्रम से मार्गणाओं में आस्रवों को कहूँगा।।24।।

पर्याप्त-अपर्याप्त के आस्रव

मिस्सतियकम्मणूणा पुण्णाणं पच्चया जहाजोगा।
मणवयणचउ-सरीरत्तयरहिदा पुण्णगे होंति।।25।।

मिश्रत्रिककार्मणोनाः पूर्णानां प्रत्यया यथायोग्यः।
मनोवचनचतुः शरीरत्रयरहिता अपूर्णके भवन्ति।।

पर्याप्त अवस्था में औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र, आहारकमिश्र और कार्मण से रहित यथायोग्य अपने-अपने गुणस्थानों के अनुसार आस्रव होते हैं एवं अपर्याप्तक अवस्था में चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक, वैक्रियक, आहारक ये तीन काययोग, इन ग्यारह योगों से रहित आस्रव होते हैं।।25।।

नरकगति में आस्रव

इत्थीपुंवेददुगं हारोरालियदुगं च वज्जित्ता।
णेरइयाणं पढमे इगिवण्णा पच्चया होंति।।26।।

स्त्रीपुंवेदद्विकं [1]आहारकौदारिकद्विकं वर्जयित्वा।
नारकाणां [2]प्रथमे एकपंचाशत्प्रत्यया भवन्ति।।

नारकियों के प्रथम नरक में स्त्रीवेद, पुरुष वेद, आहारक, आहारकमिश्र, औदारिक, औदारिकमिश्र इन छह आस्रव के बिना इक्यावन आस्रव होते हैं।।26।।

1. आहारद्विकं औदारिकद्विकं। 2. गुणस्थाने।

विदि[1]यगुणे णिरयगदिं ण यादि इदि तस्स णत्थि कम्मइयं।
वेगुव्वियमिस्सं च दु ते होंति हु अविरदे ठाणे।।27।।

द्वितीयगुणेन नरकगतिं न याति इति तस्य नास्ति कार्मणं।
वैक्रियिकमिश्रं च तु तौ भवतो हि अविरते स्थाने।।

द्वितीय गुणस्थान से नरकगति में नहीं जाता है अतः नरक में द्वितीय गुणस्थान में कार्मण, वैक्रियकमिश्र नहीं रहते हैं। ये दोनों अविरतगुणस्थान में रहते हैं अर्थात् प्रथम नरक में चौथे गुणस्थान में ही वैक्रियकमिश्रकार्मण रहते हैं, सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्व सहित मरकर पहले नरक तक ही जा सकता है।।27।।

सक्करपहुदिसु एवं अविरदठाणे ण होइ कम्मइयं।
वेगुव्वियमिस्सो वि य तेसिं मिच्छेव वोच्छेदो।।28।।

शर्कराप्रभृतिषु एवं, अविरतस्थाने न भवति कार्मणं।
वैक्रियिकमिश्रमपि च तयोः मिथ्यात्वे एव व्युच्छेदः।।

द्वितीय नरक से लेकर सातवें नरक तक इसी प्रकार आस्रव हैं, अंतर केवल इतना ही है कि अविरत गुणस्थान में वैक्रियक मिश्र और कार्मण नहीं होता है क्योंकि इन दोनों की व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में ही हो जाती है।।28।।

प्रथम नरक रचना, आस्रव 51

(2)

गु.	आ.	अना.	आस्रव व्युच्छित्ति	विशेष
मि.	51	0	5	व्यु. 5 मिथ्यात्व
सा.	44	7	4	51-5=46, 46-2=44 वैक्रियक मिश्र. का. 2 व्यु. 4, अनंता.,
मि.	40	11	0	44-4=40
अवि.	42	9	8	40+2=42 वैक्रि. मि.का. 2 मिल गई, व्यु. 8 अप्रत्याख्या. 4, त्रसबंध 1, वैक्रियक 2, का.1।

1. 'णहि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगे य तेउदुगे'। इत्यागमे।

(3) द्वितीयादि नरक में 51 आस्रव

गु.	आ.	अना.	आस्रव व्युच्छित्ति	विशेष
मि.	51	0	7	व्यु. 7, मि. वैक्रि.मि. 1 कार्म.
सा.	44	7	4	51-7=44, व्यु. 4 अनं.।
मि.	40	11	0	44-4=40
अवि.	40	11	6	व्यु. 6. अप्रत्या. 4. त्रस 1 वैक्रियक 1

तिर्यंचगति के आस्रव

वेगुव्वाहारदुगं ण होइ तिरियेसु सेसतेवण्णा।।
एवं भोगावणिजे संढ विरहिऊण वावण्णा।।29।।

वैक्रियिकाहारद्विकं न भवति तिर्यक्षु शेषत्रिपंचाशत्।
एवं भोगावनीजेषु षंढं विरह्य द्वापंचाशत्।।

तिर्यंचों में वैक्रियकद्विक, आहारकद्विक नहीं होते हैं अतः त्रेपन आस्रव होते हैं। इसी प्रकार से भोगभूमियों में वैक्रियकद्विक, आहारकद्विक एवं नपुंसकवेद से रहित 52 आस्रव होते हैं।।29।।

लद्धि अपुण्णतिरिक्खे हारदु मणवयण अट्ठ ओरालं।
वेगुव्वदुगं पुंवेदित्थीवेदं ण बादालं।।30।।

लब्ध्यपूर्णतिर्यक्षु आहारकद्विकं मनवचनाष्टकं औदारिकं।
वैक्रियिकद्विकं पुंवेदस्त्रीवेदौ न द्वाचत्वारिंशत्।।

लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचों में आहारकद्विक, मनोयोग चार, वचनयोग 4, औदारिक, वैक्रियकद्विक, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, इन पंद्रह आस्रवों के बिना 42 आस्रव होते हैं।

भावार्थ –*कर्मभूमिज तिर्यंचों में 5 गुणस्थान, भोगभूमिज में 4 एवं लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है।।30।।*

(4) कर्मभूमिज तिर्यंचों की रचना, आस्रव 53

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	53	0	5	
सा.	48	5	4	53–5=48
मि.	42	11	0	48–4=44, 44–2=42, औदा. मि. का. 2 बिना
अवि.	44	9	7	42+2=44 औ.मि.का. 2 व्यु. 7, अप्रत्या. 4, त्र. 1, औ.मि.का. 2
दे.	37	16	15	44–7=37, व्यु. 15=अवि. 11 प्रत्या. 4

(5) भोगभूमिज तिर्यंचों में आस्रव 52

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	52	0	5	
सा.	47	5	4	52–5=47
मि.	41	11	0	47–4=43, 43–2=41, औदा. मि. का. 2
अवि.	43	9	7	मि.का.2 मिले 7 व्यु., अप्रत्या. 41, त्र.1 और मि. 1, का.1

लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच में 42 आस्रव होते हैं, मिथ्यात्व ही गुणस्थान है। यहाँ कर्मभूमिज तिर्यञ्चों के चौथे गुणस्थान में औदारिक मिश्र और कार्मण सम्भवनहीं है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर कर्मभूमिज तिर्यंच नहीं हो सकता, बद्धायुष्क हुआ तो भोगभूमिज तिर्यंच हो जाता है अतः यह 44 संख्या अशुद्ध है।

मनुष्यगति के आस्रव

मणुवेसु ण वेगुव्वदु पणवण्णं संति तत्थ भोगेसु।
हारदुसंढविवज्जिद दुवण्णऽपुण्णे अपुण्णे वा।।31।।

मनुजेषु न वैक्रियिकद्विकं पंचपंचाशत् सन्ति तत्र भोगेषु।
आहारद्विकषंढविवर्जितं द्विपंचाशत्[1]अपूर्णे अपूर्णे इव।।

कर्मभूमिज मनुष्यों के वैक्रियकद्विक के बिना 55 आस्रव होते हैं। भोगभूमि

1. लब्ध्यपर्याप्तमनुष्येषु लब्ध्यपर्याप्ततिर्यग्वज्ज्ञातव्यमित्यर्थः।

मनुष्यों में आहारकद्विक और नपुंसकवेद रहित 52 होते हैं एवं लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य में लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच के समान 42 आस्रव होते हैं अर्थात् आहारकद्विक, मनोयोग चार, वचनयोग चार, औदारिक, वैक्रियकद्विक, स्त्री, पुरुषवेद इन 15 से रहित 42 आस्रव होते हैं।।31।।

(6) मनुष्यगति रचना, आस्रव 55

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	53	2	5	व्यु. 5 मि., अनास्रव 2 आहा. द्वि.
सा.	48	7	4	व्यु. 4 अनं.
मि.	42	13	0	48–4=44, 44–2=42, औदा. मिश्र. का. 2
अ.	44	11	5	42+2=44, औ.मि.का. 2. व्यु. 5 अप्रत्या. 4 त्रसवध,
दे.	37	18	15	44-5=39, 39-2=37 औ.मि. का.2 व्यु. 15-11 अवि.4, प्रत्या. कषाय।
प्र.	24	31	2	37-15=22, 22+2=24, आहा.2, व्यु. 2 आहा.
अ.	22	33	0	24-2=22
अपू.	22	33	6	व्यु. 6 नोकषाय।
अनि.1	16	39	1	22 – 6=16, क्रम से 6 भागों में 1-1 की व्युच्छित्ति, 1 व्यु. नपुंसक.
भाग.2	15	40	1	व्यु. 1 स्त्री.
3	14	41	1	व्यु. 1 पु.
4	13	42	1	व्यु. 1 क्रो.
5	12	43	1	व्यु. 1 मान
6	11	44	1	व्यु.1 माया
सू.	10	45	1	11 – 1=10, व्यु. 1 लो.
उप.	9	46	0	10 – 1=9

क्षी.	9	46	4	4 व्यु. असत्य मन वचन, उभय मनवचन, 4
स.	7	48	7	9−4=5 5+2=7 औदा. मिश्र. का. 2
अयो.	0	55	0	

(7) भोगभूमिज मनुष्य रचना, आस्रव 52

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	52	0	5	व्यु. 5 मि.
सा.	47	5	4	52-5=47, व्यु. 4 अनं.
मि.	41	11	0	47−4=43, 43−2=41, औदा. मि. का. 2
अवि.	44	9	7	41+2=43 औ.मि.का. 2, व्यु. 7, अप्रत्या. 4, त्र. 1, औ.मि.का. 2

लब्ध्यपर्याप्त में 43 आस्रव एवं प्रथम ही गुणस्थान है।

देवगति के आस्रव

देवे [1]हारोरालियजुगलं संढं च णत्थि तत्थेव।
[2]देवाणं देवीणं णेवित्थी णेव पुंवेदो।।32।।

देवेषु आहारकौदारिकयुगले षंढं च नास्ति तत्रैव।
देवानां देवीनां नैव स्त्री नैव पुंवेदः।।

देवों में आहारक युगल, औदारिक युगल और नपुंसक वेद ऐसे 5 नहीं होने से 52 आस्रव होते हैं। मात्र देवों में स्त्रीवेद और देवियों में पुरुषवेद नहीं है।।32।।

भवणतिकप्पित्थीणं असंजदठाणे ण होइ कम्मइयं।
वेगुव्वियमिस्सो वि य तेसिं पुणु सासणे छेदो।।33।।

भवनत्रिकल्पस्त्रीणां असंयतस्थाने न भवति कार्मणं।
वैक्रियिकमिश्रमपि च तयोः पुनः सासादने व्युच्छेदः।।

1. आहारकयुगलमौदारिक युगलं च।
2. देवानां स्त्रीवेदो नास्ति देवीनां च पुंवेदो नास्ति।

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिर्वासी देव और कल्पवासी देवियों में चौथे गुणस्थान में कार्मण एवं वैक्रियकमिश्र योग नहीं होता है, इन दोनों का सासादन में व्युच्छेद हो जाता है।।33।।

एवं उवरिं णवपणअणुदिसणुत्तरविमाणजादा जे।
ते देवा पुणु सम्मा अविरदठाणुव्व णायव्वा।।34।।

एवं उपरि नवपंचानुदिशानुत्तरविमानजाता ये।
ते देवाः पुनः सम्यक्त्वा अविरतस्थानवज्ज्ञातव्याः।।

इसके ऊपर नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः इनमें चौथा गुणस्थान ही होता है।।34।।

(8) भवनत्रिक-कल्पवासी देवियों में 52 आस्रव हैं

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	52	0	5	व्यु. 5 मि.
सा.	47	5	6	व्यु. 6 अनं. 4, वैक्रि. मि. कार्म.2
मि.	41	11	0	47−6=41
अवि.	41	11	6	6 व्यु. अप्रत्या. 4, त्रसवध 1. वैक्रि.1

(9) सौधर्म स्वर्ग से ग्रैवेयक तक 51 देव अथवा देवी का पृथक् होने से 1 वेद कम हो गया

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	51	0	5	
सा.	46	5	4	51−5=46, व्यु. अन. 4
मि.	40	11	0	46−4=42, 42−2=40 वैक्रि. मि. का. 2
अवि.	42	9	8	40+2=42, वै.मि.का. 2, अप्रत्या. 4 वैक्रि. 2, का. 11, त्रसवध

अनुदिश, अनुत्तर में सम्यग्दृष्टि देवों के 42 आस्रव हैं, चौथा ही गुणस्थान है।

इति गतिमार्गणा

अथ इंद्रिय मार्गणा, कायमार्गणा

पुंवेदित्थिविगुव्वियहारदुमणरसणचदुहि एयक्खे।।
मणचदुवयणचदूहि य रहिदा अडतीस ते भणिदा।।35।।

पुंवेदस्त्रीवैक्रियिकाहारकद्विकमनोरसनाचतुर्भिः एकाक्षे।
मनचतुर्वचनचतुर्भिश्च रहिता अष्टात्रिंशते भणिताः।।

एकेन्द्रिय जीवों में पुरुषवेद, स्त्रीवेद, वैक्रियकद्विक, आहारकद्विक, स्पर्शन इंद्रिय के सिवाय रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन इन पाँच इंद्रियों की अविरति, चार मनोयोग, चार वचनयोग, इन 19 आस्रव से रहित 38 आस्रव होते हैं।।35।।

एयक्खे जे उत्ता ते कमसो अंतभासरसणेहिं।
घाणेण य चक्खूहिं य जुत्ता वियलिंदिएणेया।।36।।

एकाक्षे ये उक्तास्ते क्रमशः अन्तभा[2]षारसनाभ्यां।
घ्राणेन च चक्षुर्भ्यां च युक्ता विकलेन्द्रियैं ज्ञातव्याः।।

दो इंद्रिय जीवों में इन्हीं 38 में अनुभय वचनयोग और रसना इंद्रिय मिलाने से 40 आस्रव होते हैं ऐसे ही तीन इंद्रिय जीवों में घ्राण इंद्रिय मिलाने से 41 हुये, चतुरिन्द्रिय में एक चक्षु इंद्रिय मिलाने से 42 हुये, ऐसे समझना चाहिए।।36।।

इगविगलिंदियजणिदे सासणठाणे ण होइ ओरालं।
इणमणुभयं च वयणं तेसिं मिच्छेव वोच्छेदो।।37।।

एकविकलेन्द्रियजाते सासादनस्थाने न भवति औदारिकं।
एषामनुभयं च वचनं तयोः मिथ्यात्वे एव व्युच्छेदः।।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होने वालों के सासादन गुणस्थान में औदारिक योग, अनुभयवचन नहीं होता है अतः इन दोनों की व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में ही हो जाती है।।37।।

---

1. मनोरसनाघ्राणचक्षुः श्रोत्राविरतिभिः। 2. अनुभयभाषा। 3. द्वीन्द्रिये अनुभयावचनरसनेन्द्रियाभ्यां युक्ताः, त्रीन्द्रिये ताभ्यां सह घ्राणेन सहिताः चतुरिन्द्रिये तैः सह चक्षुरिन्द्रियेण युक्ताः।

(10) एकेन्द्रिय रचना आस्रव 38

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	38	0	6	5 मिथ्यात्व, औदारिक 1=6
सा.	32	6	4	

(11) द्वीन्द्रिय रचना आ. 40

मि.	40	0	7	अनु., औ.1, मि.5
सा.	33	7	4	

(12) त्रीन्द्रिय रचना आ. 41

मि.	41	0	7	7= मि.5, औ. 1, अनु.1
सा.	34	7	4	

(13) चतुरिन्द्रिय रचना, आ. 42

मि.	42	0	7	पूर्वोक्त
सा.	35	7	4	

पंचेंदियजीवाणं तसजीवाणं च पच्चया सव्वे।
पुढवीआदिसु पंचसु एइंदिय कहिद अडतीसा।।38।।

पंचेन्द्रियजीवानां त्रसजीवानां च प्रत्ययाः सर्वे।
पृथिव्यादिषु पंचसु एकेन्द्रिये कथिता अष्टात्रिंशत्।।

पंचेन्द्रिय जीवों में और त्रस जीवों में सभी आस्रव पाये जाते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक इन पाँच स्थावरों में एकेन्द्रिय के समान 38 आस्रव होते हैं।।38।।

भावार्थ *–पंचेन्द्रिय जीवों की एवं त्रस जीवों की रचना गुणस्थानवत् समझना। पृथ्वी, जल, वनस्पतिकाय की रचना एकेन्द्रिय में कहे गये प्रथम, द्वितीय गुणस्थानवत् समझना। अग्निकायिक, वायुकायिक जीवों की रचना एकेन्द्रियमें कहे गये प्रथम गुणस्थान में समझना क्योंकि पृथ्वी, जल, वनस्पति में दो गुणस्थान होते हैं एवं अग्निकाय, वायुकाय में मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।*

योग मार्गणा

हारदुगं वज्जित्ता जोगाणं तेरसाणमेगेगं।
जोगं पुणु पक्खित्ता तेदाला इदरयोगूणा।।39।।
आहारद्विकं वर्जयित्वा योगानां त्रयोदशानां एकैकं।
योगं पुनः प्रक्षिप्य त्रिचत्वारिंशत् इतरयोगोनाः।।

आहारकद्विक को छोड़कर तेरह योग में जिसमें आस्रव को घटित करना है वह एक योग, पाँच मिथ्यात्व, 12 अविरति और 25 कषाय ये 43 आस्रव होते हैं, सभी में उस योग के सिवाय शेष योग घट जाते हैं अर्थात् औदारिक काययोग में औदारिक काययोग, 5 मिथ्यात्व , 12 अविरति, 25 कषाय रहते हैं, ऐसे तेरह योगों में सभी में अपना-अपना योग मिलाकर शेष घटा देने से 43-43 आस्रव होते हैं।।39।।

(14) असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग रचना 43

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	43	0	5	व्यु. मि. 5
सा.	38	5	4	व्यु. अनं. 4
मि.	34	9	0	अप्रत्या. 4 त्रसवध 1
अ.	34	9	5	व्यु. 15=11 अवि, प्रत्या. 4
दे.	29	14	15	
प्र.	14	29	0	
अ.	14	29	0	
अपू.	14	29	6	व्यु. हास्यादि छह
अनि.भाग-1	8	35	1	व्यु. नपुंसक वेद
भाग-2	7	36	1	व्यु. स्त्री
भाग-3	6	37	1	व्यु. पुरुष
भाग-4	5	38	1	क्रोध
भाग-5	4	39	1	मान
भाग-6	3	40	1	माया
सू.	2	41	1	लोभ
उप.	1	42	0	
क्षी.	1	42	1	व्यु. योग

(15) सत्य मनो. वचन, अनुभय मनोवचन औदारिक योग में आ. 43

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	43	0	5	
सा.	38	4	4	
मि.	34	9	0	
अ.	34	9	5	
दे.	29	14	15	
प्र.	14	29	0	
अ. अपू.	14 14	29 29	0 6	
अनि. छह भाग	8/7/6/ 5/4/3	35/36/37/ 38/39/40	1/1/1/1/ 1/1	
सू.	2	41	1	
उप.	1	42	0	
क्षी.	1	42	0	
स.	1	42	1	

ओरालमिस्स साणे संढत्थीणं च वोच्छिदी होदि।
वेगुव्वमिस्स साणे इत्थीवेदस्स वोच्छेदो।।40।।
औदारिकमिश्रस्य सासादने षंढस्त्रियोश्च व्युच्छित्तिः भवति।
वैक्रियिकमिश्रस्य सासादने स्त्रीवेदस्य व्युच्छेदः।।

औदारिकमिश्र के सासादन गुणस्थान में नपुंसकवेद, स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति होती है, वैक्रियकमिश्र के सासादन गुणस्थान में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति होती है।।40।।

तेसिं साणे संढं णत्थि हु सो होइ अविरदे ठाणे।
कम्मइए विदियगुणे इत्थीवेदच्छिदी होइ।।41।।
तेषां सासादने षंढं नास्ति हु स भवति अविरते स्थाने।
कार्मणे द्वितीयगुणे स्त्रीवेदच्छित्तिः भवति।।

वैक्रियकमिश्र में सासादन में नुपंसकवेद नहीं है किन्तु चौथे गुणस्थान में अवश्य है अर्थात् देवों को वैक्रियकमिश्र होता है, वहाँ नपुंसकवेद है ही नहीं और नरक में होता है तो वहाँ सासादन से मरकर जाता नहीं है। कार्मण काययोग में द्वितीय गुणस्थान में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति होती है।।41।।

संजलणं पुवेयं हस्सादीणोकसायछक्कं च।
णियएक्कजोगसहिया वारस आहारगे जुम्मे।।42।।
संज्वलनं पुंवेदं हास्यादिनोकषायषट्कं च।
निजैकयोगसहिता द्वादश आहारके युग्मे।।

आहारक काययोग में चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्यादि नो कषाय छह और आहारक योग ये 12 आस्रव होते हैं, ये ही बारह आहारकमिश्र में होते हैं केवल योग के स्थान में आहारक निकालकर आहारकमिश्र कर दीजिये।।42।।

वेदमार्गणा

(16) औदारिक मिश्र रचना, आ. 43

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	43	0	5	मि. 5
सा.	38	5	6	व्यु.–अनु. 4 नपुं. स्त्रीवेद 2
अवि.	32	11	31	व्यु.–12 अवि., 19 कषाय
सयोगी.	1	42	1	व्यु. औ. मि. 1

(17) वैक्रियक योग रचना, आ. 43

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	43	0	5	
सा.	38	5	4	
मि.	34	9	0	
अ.	34	9	6	व्यु. अप्रत्या. 4, त्रसवध, वैक्रि. 2

(18) वैक्रियक मिश्र में आ. 43

मि.	43	0	5	
सा.	37	6	5	व्यु. अनं. 4 स्त्रीवेद 1
अ.	33	10	6	37–5=32, 32+1=33 नपुं.

(19) कार्मण रचना, आ. 43

मि.	43	0	5	
सा.	38	5	5	
अवि.	33	10	32	
स.	1	42	1	व्यु. कार्म.

आहारकद्विक में छठा गुणस्थान ही होता है उसमें 12 आस्रव हैं।

पुंवेदे थीसंढं वज्जित्ता सेसपच्चया होंति।
इत्थीवेदे हारदु पुंसंढं च वज्जिदा सव्वे।।43।।
पुंवेदे स्त्रीषंढाभ्यां वर्जिता शेषप्रत्यया भवन्ति।
स्त्रीवेदे आहारद्विकेन पुंषंढाभ्यां च वर्जिता सर्वे।।

पुरुषवेद में स्त्रीवेद, नपुंसकवेद को छोड़कर सभी आस्रव होते हैं। स्त्रीवेद में आहारकद्विक, पुरुषवेद, नपुंसकवेद को छोड़कर 53 आस्रव होते हैं।।43।।

मिस्सदुकम्मइयच्छिदी साणे[1] संढे ण होइ पुरसिच्छी।
हारदुगं विदियगुणे ओरालियमिस्स वोच्छेदो।।44।।

1. स्त्रीवेदस्य सासादनगुणस्थाने।

मिश्रद्विककार्मणच्छित्तिः सासादने, षंढे न भवतः पुरुषस्त्रियौ।
आहारद्विकं द्वितीयगुणे औदारिकमिश्रस्य व्युच्छेदः।।

स्त्रीवेद के सासादन गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र और कार्मण की व्युच्छित्ति हो जाती है। नपुंसकवेद में पुरुषवेद, स्त्रीवेद, आहारकद्विक चार आस्रव न होने से 53 होते हैं। नपुंसकवेद के द्वितीय गुणस्थान में औदारिकमिश्र की व्युच्छित्ति हो जाती है।।44।।

तेसिं अवणिय वेगुव्वियमिस्स अविरदे हु णिक्खेवे।
कोहचउक्के माणादिबारसहीण पणदाला।।45।।

तेषां अपनीय वैक्रियिकमिश्रं अविरते हि निक्षिपेत्।
क्रोधचतुष्के मानादिद्वादशहीनाः पंचचत्वारिंशत्।।45।।

इस नपुंसकवेद के सासादन गुणस्थान में वैक्रियकमिश्र नहीं है परन्तु चतुर्थ गुणस्थान में वैक्रियक मिश्र होता है।।45।।

(20) पुंवेद रचना, आ. 55

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	53	2	5	अनास्रव 2, आहारकद्विक
सा.	48	7	4	
मि.	41	14	0	
अ.	44	11	9	व्यु. अप्रत्या, 4, त्रसवध 1, वैक्रि. 2, औदा. मि. का. 2
दे.	35	20	15	44 – 9=35
प्र.	22	33	2	35 – 15=20, 30+2=32 आहा. 2, व्यु. आहा.2
अ.	20	35	0	
अपू.	20	35	6	व्यु. हास्यादि 6
अनि.1	14	14	0	
भाग-2	14	41	0	
भाग-3	14	41	1	नवमें के तृतीय भाग में पुंवेद व्युच्छिन्न हुआ

(21) स्त्रीवेद रचना, आ. 53

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	53	0	5	
सा.	48	5	7	व्यु. अनं. 4, औदारिक मिश्र, वैक्रियक मिश्र, कार्म. 3
मि.	41	12	0	
अ.	41	12	6	व्यु. अप्रत्या. 4, वैक्रियक 1, त्रस. 2
दे.	35	18	15	
प्र.	20	33	0	
अ.	20	33	0	
अपू.	20	33	6	
अनि.1	14	39	0	
2	14	39	1	स्त्रीवेद, नवमें के द्वितीय भाग में।

(22) नपुंसक वेद रचना, आ. 53

मि.	53	0	5	
सा.	47	6	5	व्यु. अनं. 4, औ. मिश्र 1, 53 – 5=48, 48 – 1=47 वैक्रि. मि. नहीं है।
मि.	41	12	0	
अ.	43	10	8	व्यु.अप्र.4, त्रस.1, वैक्रि.1
दे.	35	18	15	43 – 8=35
प्र.	20	33	0	
अप्र.	20	33	0	
अपू.	20	33	6	
अनि.	14	39	1	व्यु. नपुंसकवेद।

विशेष– **यहाँ स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नव गुणस्थानों में हैं यह भाववेद का कथन है।**

कषाय मार्गणा

अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन इन चारों क्रोध कषायों में चार मान, चार माया और चार लोभ ऐसे 12 कषाय नहीं रहने से 45 आस्रव होते हैं।।45।।

(23) क्रोधचतुष्क रचना, आ. 45

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	43	2	5	
सा.	38	7	1	अनं. क्रोध 1
मि.	34	11	0	38−1=37, 37−3=34, औ.मि.वैक्रि. मि. कार्म. 3
अ.	37	8	6	34+3=37, औ. वै. मिश्र., कार्मण 3, व्यु. 6 अप्रत्या. 4 त्रस. वैक्रि.1
दे.	31	14	12	व्यु. प्रत्या. 1 क्रोध, 11 अविरति
प्र.	21	24	2	31−12=19, 19+2=21, आहा. 2, व्यु. आहा. 2
अ.	19	26	0	
अपू.	19	26	6	
अनि.1	13	32	1	व्यु. नपुंसकवेद
भाग 2	12	33	1	व्यु. स्त्रीवेद
भाग 3	11	34	1	व्यु. पुरुषवेद
भाग 4	10	35	1	व्यु. संज्वलन क्रोध

ऐसे ही कोष्ठक रचना मानचतुष्क, मायाचतुष्क, लोभचतुष्क में है, अंतर इतना ही है कि संज्वलन मान का नवमें के पंचमभाग में, माया का छठे भाग में एवं लोभ का दशवें गुणस्थान में व्युच्छेद होता है।

माणादितिये एवं इदरकसाएहिं विरहिदा जाणे।
कुमदिकुसुदे ण विज्जदि हारदुगं होंति पणवण्णा।।46।।

मानादित्रिके एवं इतरकषायैः विरहितान् जानीहि।
कुमतिकुश्रुतयोः न विद्यते आहारद्विकं भवन्ति पंचपंचाशत्।।

मानादि तीनों कषायों में भी इसी प्रकार से इतर कषायों से रहित समझो। कुमति, कुश्रुत में आहारकद्विक न होने से 55 आस्रव हैं।।46।।

(24) कुमति, कुश्रुत रचना, आ. 55

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	55	0	5	
सा.	50	5	4	

(25) विभंग रचना, आ. 52

मि.	52	0	5	
सा.	47	5	4	

वेभंगे वावण्णा कमणमिस्सदुगहारदुगहीणा।
णाणतिये अडदालं पणमिच्छाचारिअणरहिदा।।47।।

विभंगे द्विपंचाशत् कार्मणमिश्रद्विकाहारद्विकहीनाः।
ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् पंचमिथ्यात्वचतुरनरहिताः।।

विभंग अवधिज्ञान में आहारकद्विक, वैक्रियकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण, ये पाँच आस्रव न होने से 52 होते हैं। मति, श्रुत, अवधिज्ञान में पाँच मिथ्यात्व और चार अनंतानुबंधी से रहित 48 आस्रव होते हैं।।47।।

(26) मति, श्रुत, अवधिज्ञान रचना, आ. 48

अ.	46	2	9	व्यु. अप्रत्या. 4, वैक्रि. 2, त्रसवध, औदा. मिश्र. 1 कार्मण 1
दे.	37	11	15	
प्र.	24	14	2	37−15=22, 22+2=24, आहा., व्यु.आ. 2
अ.	22	26	0	

अपू.	22	26	6	
अनि.1	16	32	1	
भाग-2	15	33	1	
भाग-3	14	34	1	
भाग-4	13	35	1	
भाग-5	12	36	1	
भाग-6	11	37	1	
सू.	10	38	1	व्यु. लोभ
उप.	9	39	0	
क्षी.	9	39	4	असत्य उभय मनोवचन योग 4

मणपज्जे संढित्थीवज्जिदसगणोकसाय संजलणं।
आदि मणवजोगजुदा पच्चयवीसं मुणेयव्वा।।48।।
मनःपर्यये षंढस्त्रीवर्जितसप्तनोकषायाः संज्वलनाः।
आदिमनवयोगयुक्ताः प्रत्ययविंशतिः ज्ञातव्या।।

मनःपर्यय ज्ञान में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध,मान, माया, लोभ, चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक योग ये 20 आस्रव होते हैं। स्त्रीवेद, नपुंसक वेद में मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है।।48।।

ओरालं तंमिस्सं कम्मइयं सच्चअणुभयाणं च।
मणवयणाण चउक्के केवलणाणे सगं जाणे।।49।।
औदारिकं तन्मिश्रं कार्मणं सत्यानुभयानां च।
मनोवचनानां चतुष्कं केवलज्ञाने सप्त जानीहि।।

केवलज्ञान में औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण, सत्य मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभयवचनयोग ये सात आस्रव होते हैं।।49।।

मनःपर्ययज्ञान में छठे से बारहवें गुणस्थान तक एवं केवलज्ञान में सयोगी, अयोगी होते हैं।

(27) मनःपर्ययज्ञान रचना, आ. 20

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
प्र.	20	0	0	
अ.	20	0	0	
अपू.	20	0	6	
अनि. 6 भाग	14/14/14/ 13/12/11	6/6/6/ 7/8/9	0/0/1/ 1/1/1	
सू.	10	10	1	
उप.	9	11	0	
क्षी.	9	11	4	असत्य उभय मनोवचन योग 4

केवलज्ञान में सयोगी के 7 योग हैं एवं इसी के अंत में व्युच्छित्ति होकर अयोगी योगरहित होते हैं।

(28) केवलज्ञान रचना, आ. 7

आस्रव	अनास्रव	आस्र.व्यु.
सयोगी	0	7
अयोगी.	7	0

संयम मार्गणा

अडमणवयणोरालं हारदुगं णोकसाय संजलणं।
सामाइयछेदेसु य चउवीसा पच्चया होंति।।50।।
अष्टमनोवचनौदारिका आहारद्विकं नोकषायाः सजलनाः।
सामायिकच्छेदयोश्च चतुर्विंशतिः प्रत्यया भवन्ति।।

सामायिक, छेदोपस्थापना चारित्र में चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक योग, आहारकद्विक, नव नोकषाय, चार संज्वलन ऐसे 24 आस्रव होते हैं।।50।।

विंसदि परिहारे संढित्थीहारदुगवज्जिया एदे।
सुहुमे णवआदिमजोगा संजलणलोहजुदा।।51।।
विंशतिः परिहारे षंढस्त्री-आहारद्विकवर्जिता एते।
सूक्ष्मे नवादिमयोगा संज्वलनलोभयुताः।।

परिहारविशुद्धि संयम में नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, आहारकद्विक से रहित 20 आस्रव होते हैं। सूक्ष्मसांपराय में आदि के नौ योग, संज्वलन लोभ ये 10 आस्रव होते हैं।।51।।

एदे पुण जहखादे कम्मणओरालमिस्ससंजुत्ता।
संजलणलोहहीणा एगादसपच्चया णेया।।52।।
एते पुनः यथाख्याते कार्मणौदारिकमिश्रसंयुक्ताः।
संज्वलनलोभहीना एकादशप्रत्यया ज्ञेयाः।।

यथाख्यात चारित्र में औदारिक मिश्र और कार्मण से सहित एवं संज्वलन लोभ से रहित 10+2=12, 12−1=11 आस्रव होते हैं।।52।।

तसऽसंजमवज्जिता सेसऽजमा णोकसाय देसजमे।
अट्ठंतिल्लकसाया आदिमणवजोग सगतीसा।।53।।
त्रसासंयमवर्जिताः शेषायमा नोकषाया देशयमे।
अष्टौ अन्तिमकषाया आदिमनवयोगाः सप्तत्रिंशत्।।

देशसंयम में त्रसवध से रहित 11 अविरति, नव नोकषाय और प्रत्याख्यान, संज्वलन की 8 कषाय आदि के नव योग ये 37 आस्रव होते हैं।।53।।

आहारयदुगरहिया पणवण्ण असंजमे दु चक्खुदुगे।
सव्वे णाणतिकहिदा अडदाला ओहिदंसणे णेया।।54।।
आहारकद्विकरहिताः पंचपंचाशदसंयमे तु चक्षुर्द्विके।
सर्वे, ज्ञानत्रिककथिता अष्टचत्वारिंशत् अवधिदर्शने ज्ञेयाः।।

असंयम में आहारकद्विक से रहित 55 आस्रव होते हैं।।54।।

भावार्थ–*सामायिक, छेदोपस्थापना छठे गुणस्थान में, नवमें तक परिहार विशुद्धि छठे सातवें में, सूक्ष्मसांपराय दशवें में, यथाख्यात चारित्र 11, 12, 13, 14 वें तक होता है। देशसंयम पाँचवें गुणस्थान में होता है एवं असंयम प्रथम से चौथे तक होता है।*

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन में सभी आस्रव हैं। अवधिदर्शन में अवधि ज्ञानवत् 48 हैं।।54।।

(28) सामायिक छेदोपस्थापना, रचना, आ. 24

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
प्र.	24	0	2	व्यु. आहा. 2
अ.	22	2	0	
अपू.	22	2	6	व्यु. हास्यादि 6
अनि.1	16	8	1	नपुं.
भाग-2	15	9	1	स्त्री.
भाग-3	14	10	1	पु.
भाग-4	13	11	1	
भाग-5	12	12	1	
भाग-6	11	13	1	

परिहारविशुद्धि में छठे, सातवें में 20 आस्रव होते हैं। सूक्ष्मसांपराय में 10 आस्रव हैं।

(29) यथाख्यातचारित्र रचना, आ. 11

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
उप.	9	2	0	
क्षी.	9	2	4	असत्य 2, उभय 2
स.	7	4	7	9−4=5, 5+2=7, औ.मि. का.यो.
अ.	0	11	0	

(30) असंयम रचना, आ. 55

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	55	0	5	5 मि.
सा.	50	5	4	अनं.
मि.	43	12	0	50−4=46, 46−3=43, औ.वै.मि.का.
अ.	46	9	9	अप्रत्या. 4, त्रस. 1, वैक्रिय.2, औ.मि.1, का.1

दर्शनमार्गणा एवं लेश्या मार्गणा

सगजोगपच्चया खलु केवलणाणव्व केवलालोए।
किण्हतिए पणवण्णं हारदुगं वज्जिऊण हवे।।55।।

सप्तयोगप्रत्ययाः खलु केवलज्ञानवत् केवलालोके।
कृष्णत्रिके पंचपंचाशत् आहारद्विकं वर्जयित्वा भवेत्।।

केवलदर्शन में केवलज्ञानवत् सात योगजन्य आस्रव होता है।

भावार्थ *–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन में 12 गुणस्थान होते हैं अतः 12 गुणस्थान तक कोष्ठक रचना है। अवधिदर्शन में कोष्ठक 26 वत् रचना है यहाँ पर गुणस्थान चौथे से 12 तक हैं। केवलदर्शन में सयोगी के सात आस्रव होते हैं।।55।।*

कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में आहारकद्विक को छोड़कर 55 आस्रव होते हैं।।55।।

किण्हदुसाणे वेगुव्वियमिस्सछिदी हवेइ तेउतिए।
मिच्छदुठाणे ओरालियमिस्सो णत्थि अविरदे अत्थि।।56।।

कृष्णद्विकसासादने वैक्रियिकमिश्रच्छित्तिः भवेत् तेजस्त्रिके।
मिथ्यात्वद्विस्थाने औदारिकमिश्रं नास्ति अविरतेऽस्ति।।

कृष्ण, नील लेश्या में सासादन गुणस्थान में वैक्रियकमिश्र की व्युच्छित्ति होती है। पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या में मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान में औदारिक मिश्र नहीं है और चौथे गुणस्थान में है।।56।।

(33) कृष्ण-नील रचना

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	55	0	5	
सा.	50	50	5	अनं. 4, वै.मि.1
मि.	43	43	0	50−5=45, 45−2=43, औ.मि.का.2
अ.	45	45	8	43+2=45, वैक्रि. मि. बिना

(34) कापोत लेश्या रचना

मि.	55	0	5	
सा.	50	5	4	अनं. 4
मि.	43	12	0	46−3=43 औ.मि.वै.का.3
अ.	46	9	9	

(35) पीतपद्म रचना आ. 57

मि.	54	3	5	व्यु. 5 मि.
सा.	49	8	4	व्यु. अनं. 4
मि.	43	14	0	49−3=46, औदा.मि. वैक्रि. मि. का. 3 घटे 46−3=43
अ.	46	11	9	व्यु. 9, अप्रत्या. 4, वैक्रि. 2, त्रस. औदा. का. 3
दे.	37	20	15	46−9=37 व्यु. 15, प्रत्या. 4, अवि. 11
प्र.	24	33	2	37−15=22, 22−2=24 आहा. द्विक. व्यु. आहा. 2
अप्र.	22	35	0	

भव्य मार्गणा

सुहलेस्सतिये भव्वे सव्वेऽभव्वे ण होदि हारदुगं।
पणवण्णुवसमसम्मे ते मिच्छोरालमिस्सअणरहिदा।।57।।

शुभलेश्यात्रिके भव्ये सर्वे अभव्ये न भवात्याहारद्विकं।
पंचपंचाशदुपशमसम्यक्त्वे ते मिथ्यात्वौदारिकमिश्रानरहिताः।।

शुभ तीन लेश्याओं में सभी भाव हैं। भव्य जीवों के सभी भाव होते हैं। अभव्य जीवों में आहारकद्विक रहित 55 भाव होते हैं। इनमें पूर्वोक्त कोष्ठक रचना समझना।

सम्यक्त्व मार्गणा

उपशम सम्यक्त्व में 5 मिथ्यात्व, औदारिकमिश्र, अनंतानुबंधीचतुष्क, आहारकद्विक इन 12 आस्रवों को घटा देने से 45 आस्रव रहते हैं। गुणस्थान चौथे से ग्यारहवें तक होते हैं।।57।।

(36) उपशम सम्यक्त्व रचना आ. 45

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
अ.	45	0	8	व्यु.8 अनं. 4, त्रसवध 1 वैक्रि. काम.1
दे.	37	8	15	45 – 8=37
प्र.	22	23	0	37 – 15=22 (यहाँ. आहा.द्वि.नहीं है)
अ.	22	23	0	
अपू.	22	23	6	
भाग-6 अनि. भाग 1	16	29	1	
भाग 2	15	30	1	
भाग 3	14	31	1	
भाग 4	13	32	1	
भाग 5	12	33	1	
भाग 6	11	34	1	
सू.	10	35	1	
उप.	9	36	0	

एदे वेदगखइए हारदुओरालमिस्ससंजुत्ता।
मिच्छे सासण मिस्से सगगुणठाणव्व णायव्वा।।58।।

एते वेदकक्षायिकयोः आहारद्विकौदारिकमिश्रसंयुक्ताः।
मिथ्यात्वे सासादने मिश्रे स्वकगुणस्थानवज्ज्ञातव्या।।

वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व में उपर्युक्त 45 में आहारकद्विक और औदारिक मिश्र मिलाकर 48 आस्रव होते हैं। वेदक सम्यक्त्व चौथे से सातवें तक रहता है। मिथ्यात्व, सासादन एवं मिश्र में अपने-अपने गुणस्थान के समान व्यवस्था समझना।।58।।

(37) वेदक सम्यक्त्व रचना आ. 48

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
अ.	46	2	9	व्यु.9, अप्रत्या.4, त्रस 1, वैक्रि. 2 औ. मि. कार्मण.1
दे.	37	11	15	
प्र.	24	24	2	37 – 15=22, 22+2=24, 24 – 2=22 आहा. 2
अ.	22	26	0	

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र में गुणस्थानवत् रचना है। क्षायिक सम्यक्त्व में गुणस्थानवत् रचना है, चौथे से चौदह तक गुणस्थान पाये जाते हैं।

संज्ञी मार्गणा

सण्णिस्स होंति सयला वेगुव्वाहारदुगमसण्णिस्स।
चदुमणमादितिवयणं अणिंदियं णत्थि पणदाला।।59।।

संज्ञिनः भवन्ति सकला वैक्रियिकाहारद्विकमसंज्ञिनः।
चतुर्मनांसि आदित्रिवचनानि अनिन्द्रियं न संति पंचचत्वारिंशत्।।

संज्ञी जीवों में संपूर्ण आस्रव होते हैं। असंज्ञी जीवों में आहारकद्विक, वैक्रियकद्विक, चार मनोयोग, सत्यवचन योग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, मननिमित्तक अविरति ये 12 आस्रव नहीं होते हैं।।59।।

संज्ञी जीवों में गुणस्थान 12 होते हैं अतः गुणस्थानवत् रचना समझना। असैनी में दो गुणस्थान होते हैं। यथा–

(38) संज्ञी रचना, आ. 57

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	55	2	5	
सा.	50	7	4	
मि.	43	14	0	
अ.	46	11	9	व्यु.अप्रत्या. 4, त्रस 1, वैक्रि. 2 औ. मिश्र. 1, का.1
दे.	37	20	15	
प्र.	24	33	2	
अ.	22	35	0	
अपू.	22	35	6	
अनि.1	16	41	1	
भाग 2	15	42	1	
भाग 3	14	43	1	
भाग 4	13	44	1	
भाग 5	12	45	1	
भाग 6	11	46	1	
सू.	10	47	1	
उप.	9	48	0	
क्षी.	9	48	4	

असंज्ञी रचना, आ. 45 (38)

मि.	45	0	8	व्यु. 5 मि.1 औ. पुरुषवेद, स्त्रीवेद 3 सा.
38	7	4		

आहारक मार्गणा

कम्मइयं वज्जित्ता छप्पण्णासा हवंति आहारे।
तेदाला णाहारे कम्म[1]इयरजोगपरिहीणा।।60।।

कार्मणं वर्जयित्वा षट्पंचाशद्भवन्त्याहारे।
त्रिचत्वारिंशदनाहारे कार्मणेतरयोगपरिहीनाः।।

आहारक अवस्था में कार्मण योग को छोड़कर 56 आस्रव होते हैं। अनाहारक अवस्था में कार्मणयोग के सिवाय चौदह योगों से रहित 43 आस्रव होते हैं। आहारक में पहले से लेकर तेरह तक गुणस्थान होते हैं। अनाहारक में प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और सयोगी ये गुणस्थान होते हैं।।60।।

(40) आहारक रचना, आ. 56

गु.	आ.	अना.	आ.व्यु.	विशेष
मि.	54	2	5	
सा.	49	7	4	
मि.	43	13	0	49−4=45, 45−2=43, वैक्रि. 1 मिश्र. औदा. 1 मि.
अ.	45	11	9	43+2=45
दे.	37	19	15	45−7=38, 38−1=37, औदा. मिश्र.
प्र.	24	32	2	37−15=22, 22+2=24 आहा.
अ.	22	34	0	
अपू.	22	34	6	
अनि.1	16	40	1	
2	15	41	1	
3	14	42	1	
4	13	43	1	

1. कार्मणं विहाय इतरैः चतुर्दशयोगैर्हीना इत्यर्थः।

5	12	44	1	
6	11	45	1	
सू.	10	46	1	
उप.	9	47	0	
क्षी.	9	47	4	व्यु. असत्य मन, वचन, उभय मन, वचन
स.	9	50	6	9−4=5, 5+1=6 (औदारिक मिश्र मिल गया।)

इदि मग्गणासु जोगो पच्चयभेदो मया समासेण।
कहिदो सुदमुणिणा जो भावइ सो जाइ अप्पसुहं।।61।।

इति मार्गणासु योग्यः प्रत्ययभेदो मया समासेन।
कथितः श्रुतमुनिना यो भावयति स याति आत्मसुखं।।

इस प्रकार से मार्गणाओं में योग्य आस्रव के भेदों को मुझ श्रुतमुनि ने संक्षेप से कहा है, जो भव्य जीव पठन, पाठन, मनन करके इसकी भावना करते हैं वे आत्मसुख को प्राप्त कर लेते हैं।।61।।

पयकमलजुयलविणमियविणेयजणकयसुपूयमाहप्पो।
णिज्जियमयणपहावो सो वालिंदो चिरं जयऊ।।62।।

पदकमलयुगलविनतविनेयजनकृतसुपूजामाहात्म्यः।
निर्जितमदनप्रभावः स बालेन्द्रः चिरं जयतु।।

जिनके चरणकमल युगल में विनत हुये, विनेय शिष्यजन जिनकी पूजा माहात्म्य को करते हैं, जिन्होंने कामदेव के प्रभाव को जीत लिया है, ऐसे वे श्री बालचंद्र मुनिराज इस पृथ्वी पर चिरकाल तक जयशील होवें।।62।।

इति श्री श्रुतमुनि विरचित आस्रव त्रिभंगी समाप्ता।

इस प्रकार से मार्गणा में आस्रव त्रिभंगी का प्रकरण पूर्ण हुआ।

।। मंगलं भूयात् ।।

प्रशस्ति

श्री शांतिनाथ श्री कुंथुनाथ श्री अर जिनवर को नित्य नमूँ।
श्री ऋषभदेव से महावीर तक, चौबिस जिनवर को प्रणमूँ।।
श्री सरस्वती माँ को वंदूं, श्री गौतमगणधर को प्रणमूँ।
आचार्य उपाध्याय साधु परम-गुरुओं को पुनः पुनः प्रणमूँ।।1।।

श्री मूलसंघ में कुंदकुंद आम्नाय, सरस्वति गच्छ कहा।
विख्यात बलात्कारगण से, गुरु परम्परा से मान्य रहा।।
इसमें अगणित आचार्य हुए, इन सबको वंदन मेरा है।
सब परम्परा सूरी-मुनि को, नितप्रति अभिनंदन मेरा है।।2।।

बीसवीं सदी में प्रथम सूरि, चारित्रचक्रवर्ती गुरुवर।
श्री शांतिसागराचार्य हुए, उन पट्टाचार्य वीरसागर।।
इनसे महाव्रत दीक्षा लेकर, मैं नाम 'ज्ञानमति' प्राप्त किया।
जिनदेव शास्त्र गुरु की भक्ती से ज्ञानामृत का लाभ लिया।।3।।

श्री वीर संवत् चौबीस सौ निन्यानवे भाद्रपद शुक्ला में।
पंचमी तिथी को पूर्ण किया, भाषानुवाद इसका मैंने।।
"आस्रव त्रिभंगी" ग्रंथ लघू, यह भव्यों को हितकारी है।
इसमें कोष्ठक रचना पढ़ने, में ग्रंथ बना सुखकारी है।।4।।

यह ग्रंथ सदा ही इस भू पर, सबको ज्ञानामृत देवेगा।
जब तक जग में रवि, शशि तब तक, भवि को शुभ आस्रव देवेगा।।
मेरे अशुभास्रव को रोके, शुभ आस्रव का कारण होवे।
पुनरपि आस्रवविरहित पद दे, 'कैवल्यज्ञानमति' कर देवे।।5।।

बंधप्रत्यय

बंध प्रत्यय अर्थात् बंध के कारण चार माने हैं।

श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में अनेक बार—

चउण्णं पच्चयाणं[1]।'' चउसु पच्चएसु[2]।।''

टीकाकारों ने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ऐसे नाम दिये हैं।

षट्खण्डागम में तो अनेक स्थलों पर ये प्रत्यय चार ही माने हैं। षट्खण्डागम में तृतीय खण्ड का नाम ही ''बंध स्वामित्व-विचय'' है। धवला पु. 8, में देखिए–

'मिच्छत्तासंजमकसाय-जोगा इदि एदे चत्तारि मूलपच्चया।[3]

अर्थात् मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार मूल प्रत्यय हैं।

इनके भेद 57 हैं। मिथ्यात्व के 5, अविरति के 12, कषाय के 25 एवं योग के 15 भेद होते हैं।

इस तृतीय खंड में इन 57 प्रत्यय–कारणों को गुणस्थान व मार्गणाओं में घटित किया है।

विशेष—यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि–जो बन्ध के कारण हैं वे ही कर्म के आस्रव के कारण हैं। अतः यह 'आस्रव त्रिभंगी' छोटा सा ग्रंथ है। इसमें भी इन्हीं चार भेद के 57 भेद करके गुणस्थान और मार्गणाओं में आस्रव, अनास्रव व आस्रव व्युच्छित्ति को अच्छी तरह समझाया गया है।

समयसार ग्रंथ मे श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है–

सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंध कत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य बोद्धव्वा[4]।।109।।

अर्थ—सामान्य से बंध के करने वाले प्रत्यय–कारण चार हैं।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। ऐसा जानना चाहिये।

मूलाचार मे भी चार प्रत्यय माने हैं।

आगे श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने बंध के पांच कारण माने हैं। देखिये–तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 8 का प्रथम सूत्र–**मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाययोगा**

१. मुनिचर्या पृ. २५। २. मुनिचर्या पृ. १३५-१६९। ३. धवला पुस्तक-८ पृ. १९-२०। ४. समयसार पृ. ३९३।

बंधहेतवः।।1।।

यहाँ मिथ्यात्व के 5 भेद, अविरति के 12, प्रमाद के 15, कषाय के 25 व योग के 15 भेद लिये हैं।

सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में श्री पूज्यपाद स्वामी ने अनेक भेद कहे हैं[1]–

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं।।1।।

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का है–नैसर्गिक और परोपदेशपूर्वक। इनमें से जो परोपदेश के बिना मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जीवादि पदार्थों का अश्रद्धानरूप भाव होता है वह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है तथा परोपदेश के निमित्त से होने वाला मिथ्यादर्शन चार प्रकार का है–क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनयिक। अथवा मिथ्यादर्शन पाँच प्रकार का है–एकान्त मिथ्यादर्शन, विपरीतमिथ्यादर्शन, संशयमिथ्यादर्शन, वैनयिकमिथ्यादर्शन और अज्ञानिक मिथ्यादर्शन। यही है, इसी प्रकार का है इस प्रकार धर्म और धर्मों में एकान्तरूप अभिप्राय रखना एकान्त मिथ्यादर्शन है। जैसे यह सब जग परब्रह्मरूप ही है, या सब पदार्थ अनित्य ही हैं या नित्य ही हैं। सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ मानना, केवली को कवलाहारी मानना और स्त्री सिद्ध होती है इत्यादि मानना विपर्यय मिथ्यादर्शन है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर क्या मोक्षमार्ग है या नहीं इस प्रकार किसी एक पक्ष को स्वीकार नहीं करना संशय मिथ्यादर्शन है। सब देवता और सब मतों को एक समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है। हिताहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञानिक मिथ्यादर्शन है। कहा भी है–''क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के चौरासी, अज्ञानियों के सड़सठ और वैनयिकों के बत्तीस भेद हैं।

छहकाय के जीवों की दया न करने से और छह इन्द्रियों के विषय भेद से अविरति बारह प्रकार की है। सोलह कषाय और नौ नोकषाय ये पच्चीस कषाय हैं। यद्यपि कषायों से नोकषायों में थोड़ा भेद है पर वह यहाँ विवक्षित नहीं है, इसलिए सबको कषाय कहा है। चार मनोयोग, चार वचनयोग और पाँच काययोग ये योग के तेरह भेद हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आहारक

१. सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८, सूत्र-१, पृ. २९१ से २९३।

ऋद्धिधारी मुनि के आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोग भी सम्भव हैं इस प्रकार योग पन्द्रह भी होते हैं। शुद्ध्यष्टक और उत्तम क्षमा आदि विषयक भेद से प्रमाद अनेक प्रकार का है। इस प्रकार ये मिथ्यादर्शन आदि पाँचों मिलकर या पृथक्-पृथक् बन्ध के हेतु हैं।

स्पष्टीकरण इस प्रकार है–मिथ्यादृष्टि जीव के पाँचों ही मिलकर बंध के हेतु हैं। सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि के अविरति आदि चार बंध के हेतु हैं। संयतासंयत के विरति और अविरति ये दोनों मिश्ररूप तथा प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं। प्रमत्तसंयत के प्रमाद, कषाय और योग ये तीन बन्ध के हेतु हैं। अप्रमत्तसंयत आदि चार के योग और कषाय ये दो बन्ध के हेतु हैं। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली इनके एक योग ही बन्ध का हेतु है। अयोगकेवली के बन्ध का हेतु नहीं है।

द्रव्यसंग्रह में मूल में पाँच भेद मानकर उनके प्रभेद कम किये है। यथा–

मिच्छत्ताविरदिपमाद-जोगकोधादओथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चउ, कमसो भेदा दु पुव्वस्स।।30।।

अर्थ—पाँच मिथ्यात्व, पाँच अविरति, पंद्रह प्रमाद, तीनयोग, और चार कषाय ये बत्तीस भेद भी भावास्रव के होते हैं।

इन दो प्रकार से कहे बंध अथवा आस्रव के कारणों को समझ कर उन-उन आचार्यों की कृति में परिवर्तन या परिवर्धन नहीं करना चाहिये।

श्री गौतमस्वामी, श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्य, श्रीकुंदकुददेव के कथित ग्रंथों में बंध के चार कारण व उनके 57 भेदों को समझना चाहिये। आगे श्री उमास्वामी आचार्य व श्री नेमिचंद्राचार्य आदि आचार्यों के प्रमाद सहित पाँच भेदों को व उनके प्रभेदों को भी उनके टीका ग्रंथों से जानना चाहिये।

हमारे व आपके लिये ये सभी आचार्यदेव प्रमाणीक हैं व उनके ग्रन्थ प्रमाणीक हैं।

जैन आगम में द्वादशतप

(इनके क्रम में अन्तर)

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं[1] वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीर-परिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।3।।

छह अभ्यंतर छह बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।3।।

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।
कायस्स वि परितावो विवत्तिसयणासणं छट्ठं।।346।।[2]

अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तपरिसंख्यान, कायक्लेश और विविक्त शयनासन ये छह बाह्य तप हैं।।346।।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो।।360।।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग-ये अभ्यन्तर तप हैं।।360।।

इसी प्रकार 12 तप का यही क्रम धवला पु. 13 में पृ. 54 से 88 तक है।

आगे तत्त्वार्थसूत्र में अन्तर हुआ है। पुनः आगे के सभी आचार्यों ने प्रायः यही तत्त्वार्थसूत्र का क्रम लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में यह क्रम है–

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः।।19।।

१. मूलाचार पूर्वार्द्ध, पृ. २८३। २. मूलाचार पूर्वार्द्ध, पृ. २९२।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।20।।

इन दोनों में केवल बाह्य तप में 'कायक्लेश' तप को तथा अभ्यंतर तप में 'ध्यान' तप को श्री गौतम स्वामी ने श्री कुंदकुंददेव ने व श्री धवलाकार ने पाँचवें नम्बर पर लिया है तथा श्री उमास्वामी आचार्य ने इन दोनों तपों को छठे नम्बर पर रखा है। हमारे लिए दोनों कथन मान्य हैं क्योंकि हमारे व आपके लिए सभी पूर्वाचार्य प्रमाण हैं। धवला टीका में षट्खण्डागम जैसे महान ग्रंथों में भी जहाँ दो आचार्यों के दो मत आ गये हैं, वहाँ कैसा समाधान है। देखिए-

षट्खण्डागम धवला पुस्तक 1 में पृ. 197 पर कषायों के क्षय के क्रम में दो आचार्यों के अलग-अलग मत आये, तो प्रश्न हुआ कि एक ही कथन सत्य होगा न कि दोनों ?.....

तब श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं–

''दोण्ह वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे ? केवली सुदकेवली वा जाणादि ण अण्णो तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कालाइरिएहि वज्जभीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो अण्णहा वज्जभीरुत्त-विणासादो त्ति।''

शंका–दोनों प्रकार के वचनों में से किसी वचन को सत्य माना जाये ?

समाधान–इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है इसलिये पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिये अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जायेगा।[1]

शंका–बादर निगोद जीवों से प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं दी ?

समाधान–**'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।'** यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।[2]

आश्चर्य होता है कि धवला टीकाकार ने कह दिया कि इसका समाधान 'श्री गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।' किन्तु आज श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित प्रतिक्रमण पाठ में ही परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन देखा जा रहा है, यह उचित नहीं है।

मूलाचार में देवियों की आयु के बारे में अंतर है। यथा–

१. धवला पु.१, पृ. २२२, २२३। २. धवला पु. ७, पृ. ५४१।

इसकी टीका में श्री वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य कहते हैं–

''......द्वौ अपि उपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशात्, द्वयोर्मध्ये एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र संदेहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति संदेहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।''[1]

दोनों ही उपदेश ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपि यह निश्चित है कि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिये। इस विषय में संशयमिथ्यात्व भी नहीं है, क्योंकि 'जो अर्हंतदेव द्वारा प्रणीत है वही सत्य है' इस प्रकार से संशय का अभाव है, क्योंकि छद्मस्थों को यह विवेक करना शक्य नहीं है इसलिये मिथ्यात्व के भय से ही दोनों को ग्रहण करना चाहिये।

इन सभी प्रमाणों से यह निश्चित हो जाता है कि हम और आप सभी साधु-साध्वी, विद्वान् तथा श्रावकगण किसी भी ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन का साहस न करें, जहाँ ऐसे दो तरह के प्रकरण हों, वहाँ वैसा ही रखें व श्रद्धान करें। यदि अपना मन्तव्य भी देना है, तो टिप्पण में दे सकते हैं।

इन बारह तपों के विषय में 'द्वादशतप' नाम से पृथक् पुस्तक में विस्तार से पढ़ें।

श्री गौतमस्वामी आदि कृत		**श्री उमास्वामी आदि कृत**	
बाह्य तप	**अभ्यंतर तप**	**बाह्य तप**	**अभ्यंतर तप**
1. अनशन	1. प्रायश्चित्त	1. अनशन	1. प्रायश्चित्त
2. अवमौदर्य	2. विनय	2. अवमौदर्य	2. विनय
3. वृत्तपरिसंख्यान	3. वैयावृत्य	3. वृत्तपरिसंख्यान	3. वैयावृत्य
4. रसपरित्याग	4. स्वाध्याय	4. रसपरित्याग	4. स्वाध्याय
5. कायक्लेश	5. ध्यान	5. विविक्तशय्यासन	5. व्युत्सर्ग
6. विविक्तशय्यासन	6. व्युत्सर्ग	6. कायक्लेश	6. ध्यान

१. मूलाचार, पर्याप्त्यधिकार गा.७९, ८०।